छुंइया की छबनी

दुनू

भारत ज्ञान विज्ञान समिति

छुंइया की छबनी

दुनू

भारत ज्ञान विज्ञान समिति

नव जनवाचन आंदोलन

इस किताब का प्रकाशन भारत ज्ञान विज्ञान समिति ने
'सर दोराबजी टाटा ट्रस्ट' के सहयोग से किया है।
इस आंदोलन का मकसद आम जनता में
पठन-पाठन संस्कृति विकसित करना है।

छुंइया की छबनी **दुनू**	**Chhuniya ki Chhabani** ***Dunoo***
कॉपी संपादक राधेश्याम मंगोलपुरी	***Copy Editor*** Radheshyam Mangolpuri
ग्राफिक्स अभय कुमार झा	***Graphics*** Abhay Kumar Jha
कवर डिजाइन और लेआउट गॉडफ्रे दास	***Cover Design & Layout*** Godfrey Das
प्रथम संस्करण अक्टूबर 2007	***First Edition*** October 2007
सहयोग राशि 15 रुपये	***Contributory Price*** Rs. 15.00
मुद्रण सन साइन ऑफसेट नई दिल्ली - 110 018	***Printing*** Sun Shine Offset New Delhi - 110 018

Publication and Distribution

Bharat Gyan Vigyan Samiti

Basement of Y.W.A. Hostel No. II, G-Block, Saket , New Delhi - 110017

Phone : 011 - 26569943, Fax : 91 - 011 - 26569773

Email : bgvs_delhi@yahoo.co.in, bgvsdelhi@gmail.com

BGVS OCT 2007 2K 1500 NJVA 0046/2007

अलाप

हर शाम की वही कहानी। चूल्हे की आग बुझ जाती, अंगार भी राख हो जाते, खाना ठंडा हो जाता, और बन्नो थककर चूर वहीं चौके के पास सो जाती। देर रात जब कुत्ते भौंकना बंद कर चुके

होते, किवाड़ की खड़खड़ाहट सुनकर बन्नो जागती और आशा का दीपक मानो फिर से जाग उठता। सांकल खोलती तो एक जाना-पहचाना चेहरा अंदर दाखिल होता। नशे में धुत्त, आंखों में एक अजीब बेबसी और गुस्सा - बन्नो का दिल धप्प से पेट में समा जाता। क्रम से किसी न किसी बात पर क्रोध, गाली-गलौज, और वही मार-पीट। भोर को बन्नो काम पर जाती तो कोई दिन ऐसा न रहा होगा जब बदन का कोई हिस्सा दुखता न हो। हर शाम, रात और सुबह की वही अनंत कहानी।

लेकिन कल मार-पीट शायद एक सीमा लांघ गई। पौं फटने तक बन्नो एक कोने में पड़ी सिसियाती रही। उसका आदमी बिना कुछ कहे एक खिसियाई हुई नजर दौड़ाते हुए काम पर चला गया। पड़ोस की झुग्गियों की औरतों ने बाहर से पुकारा - रात की चीखें

कई कानों तक पहुंच चुकी थीं। लेकिन बन्नो हिली नहीं। एक टक दूर किसी दृश्य को देखती रही। अपनी पूंछ को निगलते हुए सांप की तरह उसके मन में एक सवाल बार-बार दौड़ रहा था, "क्या करूं? क्या करूं? क्या करूं?"

अचानक कुछ सुझा होगा। चेहरे से ऐसा लगा कि बन्नो किसी हल तक तो नहीं पहुंच पाई है, लेकिन कुछ तय जरूर कर लिया है। कपाल से खून को पोंछकर वह उठी, बालों को बांधा, अपनी तिजोरीनुमा बक्से से कुछ पैसे निकाले और घर में ताला लगाकर निकल पड़ी। झुग्गियों से निकलकर एक गली से होते हुए वह बड़ी सड़क पर पहुंची। वहां एक फूलवाली से छह गेंदे के फूल खरीदे और फिर तेजी से छुंइया की तरफ बढ़ी।

हमारे शहर में एक अनोखा नुक्कड़ है। किसी जमाने में शायद वहां तिराहा ही रहा होगा। एक रास्ता जाता था गढ़ी की तरफ, दूसरा पुरानी बस्ती की ओर और तीसरा सिविल लाइन की ओर ले जाता था। आज भी वे तीनों रास्ते मौजूद हैं। लेकिन जैसे-जैसे हमारी बस्ती बढ़ी, वैसे उसी नाके पर और भी सड़कें आकर मिलीं। काफी दिनों से वहां छह रास्तों का मिलन है। इसी को हम नगरवासी 'छुंइया' कहते हैं।

छुंइया के बीचोंबीच एक गोल जगह है जिसमें एक षटकोण इमारत बनी हुई है। इसको किसने बनाया और कब बनाया, यह किसी को याद नहीं। लेकिन इसकी बनावट बहुत ही प्यारी है। इमारत में छह कमरे हैं और हर कमरा सामने से खुला हुआ किसी एक सड़क पर मुंह किए हुए है। सबसे मजेदार बात है कि हर कमरे में एक सुसज्जित पत्थर की आकृति है जिसे लोग देवी के रूप में पूजते हैं। छह रास्ते, छह कमरे, और छह देवियां (जो बहनें भी हैं) – यही है हमारे शहर में 'छुंइया की छबनी'।

छबनी की इमारत में न कोई पुरोहित है, न पण्डा, न मौलवी, न बाबा। केवल एक गूंगा है जो कमरों को साफ रखता है और जिसे लोग अपनी समझ या खुशी के मुताबिक कुछ दान में दे जाते हैं। देवियां सिर्फ फूलों से सजी हैं और श्रद्धालु केवल फूल ही चढ़ाते हैं– न नारियल, न धूप, न पैसा और न ही और कोई ताम-झाम।

हमारे नगर में मानते हैं कि छबनी से कोई वरदान मांगोगे तो कुछ नहीं मिलेगा। लेकिन हां, अगर कोई सवाल पूछोगे तो कोई जवाब अवश्य मिलेगा। और अगर छह बहनें एक ही जवाब देती हैं तो मान लो भाग्य की रेखा खिंच गई! इसलिए छुंइया में हमेशा कोई न कोई भक्त मिल जाएगा। परीक्षा के समय तो बच्चों की बिल्कुल

भीड़ लग जाती है। खास बात यह है कि छुंइया में कोई किसी की जात या धर्म नहीं पूछता है। यहां सब बराबर हैं, और - हमसे पूछो तो - हमेशा रहेंगे।

साक्षात्कार

बन्नो छुंइया पहुंची और छबनी के चारों तरफ परिक्रमा करके एक आकृति के सामने खड़ी हो गई। एक गेंदे के फूल को चढ़ाया, माथा टेका और फिर हाथ जोड़े आंखें मूंदकर खड़ी हो गई। मन ही मन बोली, "छबनी मैय्या, तेरी जय हो। आज बड़ी दुखी होकर आई हूं तेरे पास। पिटते-पिटते तो अब मैं बेहाल हो गई हूं। अब और नहीं सहा जाता। तू ही बता – मैं क्या करूं?"

"मैं क्या करूं? मैं क्या करूं? मैं क्या करूं? ..." बन्नो के कानों में गूंजता रहा। उसी के साथ उसे लगा जैसे आंखों के पर्दों पर कोई आकृति लहरा रही हो। धीरे-धीरे आकृति ने एक रूप धारण किया। लेकिन वह रूप कैसा दिखता था, बन्नो आज भी बताने में असफल है। बस इतना बता सकती है कि आकृति ने क्या कहा।

"बन्नो, मैं भूदेवी हूं और तू है एक छोटी जात की नारी।

इसलिए ध्यान से मेरी बात सुन। मैं देख रही हूं कि धीरे-धीरे यह देश बिगड़ता जा रहा है। पहले समाज में संतुलन था। सबको अपना स्थान मालूम था। सब की चाहिदा कम थी और सब स्नेहपूर्वक मिल-जुलकर रहते थे। लेकिन इस आधुनिक युग में विदेशी संस्कृति ने सारी पुरानी परंपराओं को नष्ट कर दिया है। तू अपने-आपको देख कितनी निर्लज्ज बन गई है। चौके-चूल्हे को छोड़कर पराए मर्दों के साथ उठती-बैठती है। इसलिए अपने-आप को सुधार, त्याग की भावना से अपने पति की सेवा कर। उसे भी अपने कर्त्तव्य-पालन का रास्ता दिखा दे। बिना फल की चिंता किए अपना कार्य कर। यही धर्म का मार्ग है और इसी में तेरा मोक्ष है।"

बन्नो बड़ी प्रभावित हुई। उसे लगा कि उसके सामने एक दरवाजा खुल गया है। घर लौटने को हुई कि उसकी नजर हाथों में पकड़े पांच फूलों पर पड़ी। सोचा– अब जब आ ही गई हूं तो बाकी देवियों के भी दर्शन कर के जाऊं। आखिर, बिना पैसों के चूल्हा जलेगा कैसे? सारी कमाई तो वह पी जाता है। बन्नो अगले कमरे की तरफ बढ़ी, फूल चढ़ाया, आंखें मूंदकर "मैं क्या करूं?" दोहराने लगी।

इस बार एक दूसरी आकृति आंखों के सामने प्रकट हुई। दो बड़े-बड़े लाल होंठ समझाने लगे, "देख बन्नो, गरीबी में तनाव तो होगा ही। जो ईमानदारी से काम नहीं करेगा, वह नशा तो करेगा ही। इसलिए मेहनत कर और अपने घर को सुधार। नेक बनकर काम करेगी तो पैसे कमाएगी। उससे जब भरपेट खाने को मिलेगा तो तेरे आदमी को पीने की जरूरत ही क्या? स्कूल में फीस भरकर बच्चों को पढ़ाना ताकि उनका भी ज्ञान बढ़े और उन्हें भी अच्छी नौकरियां

मिलें। खुद भी पढ़ना-लिखना सीखेगी तो घर को भी और अच्छे से चला पाएगी। इससे तेरी भी तरक्की होगी और देश का भी विकास होगा। और हां, गांठ बांधकर रख ले यह श्रीदेवी की बात – "छोटा परिवार, सुखी परिवार।" इतना कहकर श्रीदेवी ओझल हो गई। फिर तुरंत पलभर के लिए प्रकट हुई, "अब हमें देखना है कि तू कैसे इक्कीसवीं सदी की तरफ बढ़ती है।"

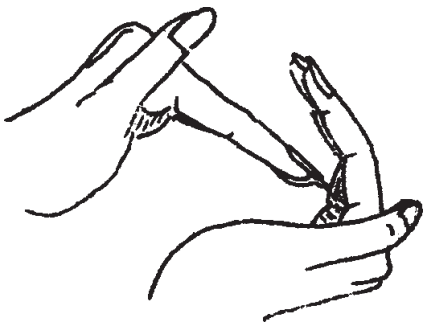

बन्नो तीसरे कमरे की तरफ बढ़ी ही थी कि हाथ हिलाते हुए बड़बड़ाती हुई एक आकृति प्रकट हुई। उसने गेंदे का फूल बन्नो के हाथ से छीन लिया। "हमें देखना है, हमें देखना है, हमें देखना है! जी नहीं, हमें कुछ नहीं देखना है!! बहुत देख लिया इस भाग्यदेवी ने। युगों से बड़ी जाति के लोग छोटी जाति को दबाते आए हैं, उनका खून चूसते आए हैं। अरे बन्नो, इस अय्याश सवर्णों से समाज की बागडोर छीननी होगी। तुम्हें अपने हक लड़कर लेने होंगे। अब अपना नया समाज बनाओ। यह जो सारी लूटमार है, यह सब तुम लोगों ने बड़ी जातियों से ही सीखी है। उन लोगों ने तुम्हें अपनी तरह बना दिया है। नहीं तो पिछड़ी जातियों में आदमी और औरत के बीच झगड़े कहां होते थे! दोनों तो युगों से एक साथ काम करते आए हैं। शोषण, दमन, भेद-भाव, हिंसा– यह सब उच्च वर्णों का काम है। उनकी नकल मत करो। उनकी नकल मत करो…", कहते-कहते भाग्यदेवी ओझल हो गई।

बन्नो कुछ घबराई-सी आगे बढ़ी। कुछ हिचकिचाते हुए फूल चढ़ाया और इस बार आंखों को हथेलियों से ढंक लिया। कोई आकृति नहीं दिखाई दी, परन्तु एक मुक्त-कंठ की आवाज कानों में गूंज उठी– "घबराओ मत बन्नो, सवाल का जवाब अत्यंत सरल है। तुम तो जानती हो कि आधुनिक समाज में केवल दो वर्ग होते हैं – पूंजीपति और सर्वहारा, और इन्हीं दोनों के टकराव से नया समाज पैदा होगा। तुम सर्वहारा में आती हो, क्योंकि तुम मेहनत करती हो और उसी से कमा कर खाती हो। तुम्हारा आदमी भी मजदूर है। काम के तनाव और धूल और धुंआ से परेशान होकर वह शराब पीता है और तुम को मारता है। इस तरह से पूंजीवादी समाज तुम्हारा दोहरा शोषण करता है– काम पर और घर में भी। तुम दोनों इस समाज के गुलाम हो। सभी मेहनतकशों को मिलकर पूंजीपतियों से लड़ना होगा। तभी यह समाज बदलेगा और तुम दोनों की मुक्ति होगी। यही है बुद्धिदेवी का जवाब। इसी के सहारे तुम अपने बंधनों को तोड़ सकती हो।"

बन्नो को लगा कि उसकी दो हथेलियों में काला आकाश समा गया है, जिसमें हजारों तारे जगमगा रहे हैं। आंखों से हाथ हटाकर वह पांचवें रास्ते की तरफ कुछ देर देखती रही। फिर धीरे-धीरे पांचवें कमरे के सामने जाकर रुकी और उत्सुकता से उसके अंदर झांकने लगी। ऐसा अहसास हुआ कि दो बड़ी आंखें कमरे के अंधेरे में उसकी तरफ बढ़ रही हैं। बन्नो ने हाथ फैलाया, "छबनी, मैं क्या करूं?"

बेपलक आंखों ने उत्तर दिया, "बहिनी, मैं स्त्री-देवी हूं। यह सवाल तो मैं भी करती हूं। मैं ही नहीं, हर नारी करती है; क्योंकि यह समाज युगों से पुरुष प्रधान है। हर काम पुरुष के इशारे पर होता है। महिला की कोई नहीं सुनता। परिवार में जन्म से ही कन्या का दमन शुरू हो जाता है, जो मौत तक चलता जाता है। औरत तो केवल संपत्ति है। इसीलिए मर्द उसे पीटता है, उसका इस्तेमाल करता है। लेकिन बन्नो, स्त्री ही इस पूरे समाज को अपने कंधों पर ढोकर ले जाती है। घर के सारे काम-काज, बाहर की नौकरी, प्रकृति की रक्षा, अगली पीढ़ी की देखभाल– समस्त काम औरत ही करती है। इसलिए मैं तो उसे सबला मानती हूं। जिस दिन वह अपनी शक्ति को पहचानेगी, उस दिन वह इस पुरुष-सत्ता को चकनाचूर कर समाज को बदल डालेगी। इसलिए तुम वापस जाओ बहिनी, और झुग्गियों में सब महिलाओं को इकट्ठा करो। उनका आत्मविश्वास जगाओ। नारी-शक्ति ही नारी-मुक्ति है।"

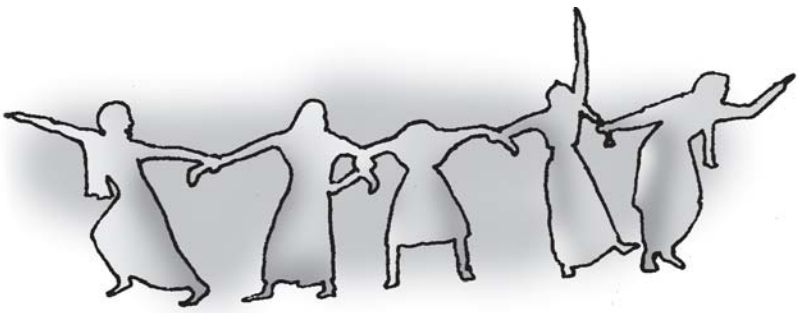

गहरे सोच में डूबी बन्नो बहुत मंद गति से छुंइया के गोल घेरे में सरकती गई। दिमाग में एक तूफान मचा हुआ था। "क्या करूं?" इनके पांच-पांच उत्तर! जब देवी-देवताओं में एक मत नहीं है, तो इंसानों का क्या होगा? अब क्या करे? बेहतर होता कि एक ही देवी

से पूछकर घर लौट जाती। अब क्या लेकर लौटेगी? कैसे तय करे कि कौन-सी देवी सही बात कह रही है? बातें तो सब की कुछ न कुछ ठीक लगती हैं! उनमें से किसकी बात को चुने? शायद छठी बहन कुछ बता सके ···

बन्नो ने चौंककर ऊपर देखा। अरे, यह तो भूदेवी की प्रतिमा है। वह झट से लौट गई। देखा कि छठे कमरे में पर्दा लटका हुआ है, कोई आकृति नहीं दिख रही है। नजर नीचे की तरफ गई तो वहां कोई लेटा हुआ था। बन्नो का कौतूहल जगा। उसने लेटे हुए उस व्यक्ति को हिलाया तो वह अंगड़ाई लेता हुआ उठ बैठा – छबनी का गूंगा था।

बन्नो ने पर्दे की तरफ इशारा करके पूछा, "मामा, इस देवी का क्या नाम है?"

गूंगे ने दीवार पर टंगी हुई शंकरजी की तस्वीर की तरफ उंगली उठा दी। बन्नो हकबकाकर बोली, "महादेव? नहीं? तब क्या? ··· ओह, मैं समझी, महादेवी! है न?" गूंगा मुस्कुराया। फिर बन्नो ने सवाल किया, "महादेवी मैय्या कहां गई हैं?"

गूंगे ने पर्दे के पीछे से कुछ कागजात निकालकर इशारा किया। मुश्किल से बन्नो ने पढ़ा, "मे ··· वा··· पु··· री··· मेवापुरी।" फिर थोड़ी देर सोचकर पूछा, "लेकिन क्यों?"

मामाजी तुरंत पलथी मारकर बैठ गए और खूब हाथ हिलाहिलाकर बोलने का नाटक करने लगे। बन्नो बोली, "कथा सुनाने गई हैं?" गूंगे ने जोर से सिर हिलाया और फिर कई जगहों में बैठकर कई मुद्राओं में वही नाटक किया। बन्नो को बात समझ में आई, "ओः, कोई बैठक है। लेकिन किस बात पर?"

गूंगे ने फिर कागजात आगे बढ़ाए। उंगली से दिखाया। एक-एक शब्द को देखकर बन्नो ने पढ़ा, "वादों की राजनीति। एक सवाल के कई जवाब।" वह खुशी से उछल पड़ी। "यह तो मेरे लिए सही जगह है। मैं भी वहीं चलती हूं···।"

आज सुबह की गाड़ी से बन्नो मेवापुरी आई है। मैं भी हूं, तुम भी हो, हम सभी हैं। और बन्नो महादेवी को ढूंढ रही है- बड़ी उत्सुकता से। मैं भी घायल मन से सोचता हूं, "बन्नो को क्या जवाब मिलेगा छुंइया की छबनी से?"

अंतरा

आप सोचते होंगे कि "मैं" कहां से टपक पड़ा? अच्छी-भली कथा बन्नो की थी। बीच में यह लंगड़ी बकरी कहां से आ गई? बात तो सही है। कथा बन्नो की ही है। मैं तो केवल कथा सुनाने वाला हूं। लेकिन अब जब कथा में "मैं" आ ही गया हूं, तो मेरे बारे में भी दो शब्द सुन लीजिए। पेशे से मिस्त्री हूं। गाड़ी मशीन दुरुस्त करके अपनी दो रोटी कमा लेता हूं। बन्नो के पास की ही एक झुग्गी में रहता हूं। इसीलिए उससे जान-पहचान हो गई है। कभी-कभी उसका थोड़ा-बहुत काम भी कर देता हूं। कुछ खास नहीं, बस ऐसे ही – दरवाजा ठीक कर दिया, चाय-पत्ती ला दी, छत पर खपड़ों को सजा दिया ···। मुझे वह 'अन्ना' कहकर पुकारती है। झुग्गियों में रहने वाले हम सभी उजड़े हुए घरों से आते हैं। इसलिए शहर में नए रिश्ते ढूंढने पड़ते हैं। जीने के लिए कुछ तो सहारा चाहिए।

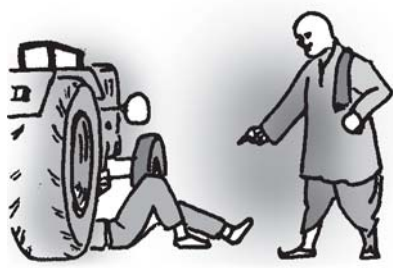

मेवापुरी में इत्तेफाक से ही पहुंचा था। कई दिनों से पास के वादोवालां के ठाकुर साहब पीछे पड़े थे कि आकर हमारा ट्रैक्टर ठीक कर दो। चार दिन पहले वादोवालां पहुंचकर ठोंक-पीट में लगा था। मशीन बनाने का काम ऐसे भी सहज होता नहीं और फिर

गांव में तो हर चीज के लिए जुगाड़ बैठाना पड़ता है। इस बार कुछ ज्यादा ही समय लग गया। जैसा कि होता है, बड़े लोगों की बीसों बातें सुननी पड़ीं। और फिर पैसों के लिए भी ठाकुर ने लटकाकर रखा।

किसी तरह दो-चार रुपये मिल गए। सोचा कि वापसी में मेवापुरी के पुराने दोस्तों से दुआ-सलाम कर लूं। वहीं पर बन्नो भी मिल गई और उसने अब तक का हाल सुनाया। मेरा मन तो बहुत था कि आगे का हाल मैं खुद अपनी आंखों से देख लूं। लेकिन जेब की हालत कमजोर थी और वादोवालां के व्यवहार से मन कुछ कैसा-कैसा हो गया था। इसलिए घर लौटने की फिक्र लगी थी।

झोला बांधकर मैं मेवापुरी से निकल पड़ा। फाटक के पास किसी हड़बड़ैया ड्राइवर ने जीप तले एक कुत्ते को दबा दिया था। उसकी अरथी दो कदम आगे बढ़ा दिया। कैसी अजीब है यह दुनिया!

अब मैं सोचता हूं, मैं कौन होता हूं बन्नो की कथा सुनाने वाला? वह खुद अपना किस्सा बता सकती है, बताना चाहती भी है वह। इसलिए आगे की कथा बन्नो आपको खुद ही सुनाएगी। अब वह चित्र भी है, चित्रकार भी, अपनी जिंदगी खुद बनाने के काबिल। मैं चला छुंइया की ओर बन्नो का इंतजार करने।

छबनी का अक्स

ऐ अन्ना! तुम यहीं बैठे हो? चलो, चलो, घर चलो। चाय पिलाऊंगी ··· अरे, एक मिनट, जरा छबनी से मिल आऊं।

न-न, कुछ चढ़ाया नहीं था। वह महादेवी मिली थी न, मेवापुरी

में? उसने कहा था, इस आईने के टुकड़े को मेरे कमरे में छोड़ जाना। बस, वही कर रही थी। ···अरे, हां हां, बताती हूं अन्ना, बताती हूं। मेवापुरी की बात और भला तुम्हें न बताऊं! इसलिए तो तुम्हें घर ले जा रही हूं।

अरे, महादेवी तो बहुत बाद में मिली। पहले, जो दूसरे नमूने आए थे, उनका किस्सा तो सुनो। कैसे-कैसे लोग आए थे! दादा रे! इतना बोलते रहे, इतना बोलते रहे, मानो सौ आटा चक्कियां चल रही हों। फुक-फुक-फुक-फुक, फुक-फुक-फुक-फुक! एक साथ! और सब अपनी-अपनी धुन में! तुम रहते तो पागल हो जाते।

पहले दिन एक बेहूदा दढ़ियल मिला। इतना जोर-जोर से बोले कि मन कांप उठे। ऊपर से इतनी मुश्किल बातें करे कि कुछ भी समझ में न आवे! कहता था किताब पढ़ो, उसमें आम आदमी की जिंदगी के बारे में लिखा है। और फिर वहीं ऊंची-ऊंची बातें करे! शाम को मैंने उसे खूब फटकार सुनाई। मैंने कहा– ऐ मिस्टर, कौन से अमीर घराने के हैं हम जी कि रोज बैठकर किताबें पढ़ें? मेरे घर चलो, पता चल जाएगा कि आम जिंदगी किसे कहते हैं। कभी पिटे भी हो? और अगर किताबों में हम जैसों के बारे में लिखा है, तो तुम्हें कौन-सी आन पड़ी कि उसे और मुश्किल बना दो? आसान तरीके से नहीं समझा सकते हो क्या? हैं? बोलो जी!

न-न, अन्ना, मैंने उसकी दाढ़ी नहीं नोची। आखिर इंसान ही तो था। लेकिन खूब सुनाया उसे, खूब सुनाया, इतना कि बेचारा अपनी नाक मरोड़ते हुए चला गया।

फिर एक चश्मुद्दीन मिला। कहता था– मैं समाजसेवी हूं, संस्था में काम करता हूं। मैंने पूछा– कौन से समाज की सेवा करते हो जी? हमारे मुहल्ले में तो कभी नहीं दिखे! तो कहता क्या है– हम आदिवासियों के बीच काम करते हैं, उनको संगठित करते हैं।

मैंने पूछा– क्यों संगठित करते हो जी? उनका आपस में उठना-बैठना नहीं है क्या? तो अन्ना, वह कहता है– हम जन-चेतना करते हैं। हम चाहते हैं कि सरल आदिवासी जिंदगी बनी रहे। पहले हमारा

जैसे रामराज था, वैसा फिर बन जाए। यह जो सारा विदेशी रहन-सहन है, उसे खत्म करके, हमलोग मिल-जुलकर नेक बनें…। बस, ऐसे ही बोलता रहा। मुझे लगा– हाय रे, यह तो भूदेवी जैसे बोलता है! मिलने आई थी महादेवी से, और मिला ये भूदेवा!

मैं भगी वहां से। लेकिन अन्ना, मेवापुरी है इतनी छोटी-सी जगह कि एक से छूटो, तो दूसरे से टकराओ। चार कदम लिए कि एक और तीरंदाज मिल गया। वह भी अपनी ही बोले– मैंने गरीबों को भैंस दिलवाई है, राशन कार्ड बनवा दिया है, राहत का काम खुलवा दिया है, बड़ी-बड़ी लड़ाइयां लड़ी हैं हमने! मैं बोली– तू तो बड़ा तीसमार खां है। लेकिन काहे को गरीबों का भला कर रहा है? उनके अपने हाथ-पैर फूल गए हैं क्या? और तेरे को भी कमीशन मिलता है क्या? तो यकीन मानो अन्ना, बिल्कुल श्रीदेवी की तरह कहता है, लोग ईमानदारी और मेहनत से पैसे कमाएंगे तब न गरीबी मिटेगी, तब न देश आगे बढ़ेगा! मैं तो सन्न रह गई। ऐसा लगा कि बेकार मेवापुरी आई, यह सब तो छुंइया में ही सुनने को मिल जाता!

मुझे क्या मालूम था कि अभी और सुनना बाकी है! अगले दिन थोड़ा चावल बीनने में हाथ बंटा रही थी कि एक पानवाला संईया आ धमका। बात-बात में कहने लगा– जाति बहुत बड़ी चीज होती है। कितना भी कुछ कर लो, एक झटके में जाति उसको काट देती है। मुझसे न रहा गया। मैं चिल्लाई– बड़े काट-छांट की बातें करते हो, कभी इन पांचों उंगलियों को मिलाकर मुट्ठी क्यों नहीं बना लेते? लेकिन अन्ना, उस पर क्या असर होवे, अपनी ही बात बोले जाए। कहने लगा– यही तो मैं कह रहा हूं। हम मजदूरों का संगठन बनाते हैं। चुनाव आता है और जाति के नाम पर वोट बांटकर हमारे सारे संगठन को चूर-चूर कर देता है। अब हमें यही सोचना है कि दबी हुई जातियों को कैसे एक साथ रखना है। फिर तो मैं खूब झल्लाई– तब तो तुम जाकर भाग्यदेवी से बात करो, मेरा सर क्यों खाते हो?

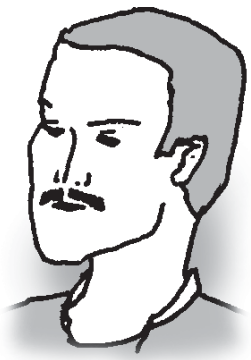

लो, घर पहुंच गए। तुम बैठो, मैं चाय बनाती हूं। नहीं, तुम बैठोगे क्यों? तुम भी कुछ काम करो। लो अन्ना, मेथी की पत्तियों को अलग कर दो।

हां, तो अन्ना, उसके बाद जो हुआ, वही तो तुमको बताना है।

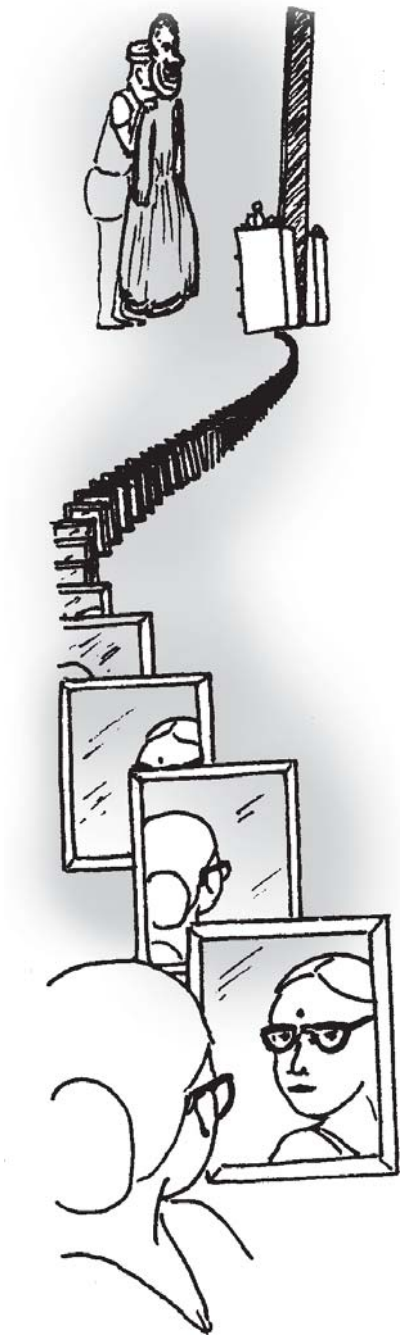

वहां मेवापुरी में मुझे ऐसा लगे कि इन सब अक्लमंद समाजसेवियों की हालत देवियों से कोई बेहतर नहीं है। सब दुनिया को बदलने का ठेका लिए हुए हैं। कोई अपने-आपको बदलने की बात ही न करे! बदलने की बात तो दूर, कोई अपनी हालत पहचानने की कोशिश भी न करे! सच अन्ना!

मैं कुढ़ते हुए चावल अंदर देने चली गई। वहां एक सखी बर्तन धो रही थी। मुझे देख कर उसने पूछा– तू इन सबों के बीच क्या कर रही है? तेरे चाल-चलन से तो नहीं लगता कि तूने समाज बदलने का ठेका ले रखा है। तेरे हाथों में तो छालों के दाग हैं!

मैं भी क्या करती? पहली बार ऐसी कोई मिली थी उस महफिल में, जो सुनने को भी तैयार थी। मैंने भी अपनी गाथा सुना दी। सारी बातें बताईं। छबनी की बात भी बताई।

फिर सखी से ही पूछा– यहां महादेवी आई है क्या?

वह हंसकर बोली– अरे पगली, यहां कोई अपनी सही पहचान लेकर थोड़े ही आता है! सब कोई न कोई चोगा या जामा पहिने हैं। और तू तो महादेवी को ढूंढ रही है। उसको इक्के-दुक्के ही पहचान पाते हैं।

मैं खुशी से लपकी उसकी तरफ- तुम महादेवी को जानती हो? तो उसने बड़े अजीब ढंग से कहा– इनमें देखा है। और अन्ना, उस ने मुझे कूड़ेदान में से शीशे के दो टुकड़े निकालकर दे दिए। मैंने एक में झांका तो मेरा ही थोबड़ा दिखे! दूसरे में भी वही हाल! मैंने कहा– सखी, क्यों मजाक उड़ाती हो? इसमें तो सिर्फ मेरी नाक ही दिखे। कहां है महादेवी?

तो सखी बोली– यह तो आईना है। इसे जिसकी तरफ करेगी, वही दिखेगा। और हां, ध्यान रहे, वह उल्टा दिखेगा।

लो चाय तैयार हो गई। अब रहने दो मेथी को। चाय पियो।

अन्ना, सखी की बात का तो मुझे कुछ भी समझ में न आवे। ऐसा लगे कि मैं कौन से पागलखाने में आ फंसी? कसम से! कभी एक शीशे में देखूं, कभी दूजे में। पहले तो कुछ भी न दिखे। बस, अपनी ही सूरत। मैं बोली– उलटा कहां? इसमें तो मैं सीधी ही खड़ी हूं। तो जानते हो अन्ना, सखी ने क्या किया? उसने मेरा यह कान पकड़ा और पूछा– बोल, मैं तेरा कौन-सा कान पकड़ रही हूं? मैंने कहा– बायां। फिर उसने कहा– अब शीशे में देखकर बता, मैंने तेरी परछाईं का कौन-सा कान पकड़ा है? अन्ना, आईने में तो वह मेरा दायां कान पकड़े हुए थी! तब वह हंसकर बोली– बायें का दायां और दायें का बायां, समझी? सीधा करना तेरा काम है। महादेवी दिख गई तो उसे भी सीधा करना पड़ेगा।

मैं शीशे को उलट-पलटकर देखने लगी। सखी की बात को पूरी तरह पकड़ने में बहुत समय लगा है अन्ना! यकायक मुझे आईने में अपनी आंख दिख गई! अन्ना, तुमने कभी अपनी आंख देखी है? नहीं देखी? हाय रे! लो, यह लो, अभी दिखाती हूं। मेरे पास अभी दूसरा शीशे का टुकड़ा बचा है न। लो, देखो। देखा? देखी अपनी आंख? कैसा अजीब लगता है! है न? है न! ठीक जैसे इंसान अपनी आत्मा के अंदर झांक रहा हो। है न मजे की बात? देखो, देखो, फिर से देखो। घबराओ मत अन्ना, अंदर का इंसान बहुत प्यारा होता है।

फिर एक और मजे की बात हुई। मैं सोचने लगी– सखी ने मुझे दो शीशे क्यों दिए? एक ही से तो मेरी शक्ल उलटी हो जावे। फिर दो क्यों दी? जरूर इसमें कोई राज है। सोचते-सोचते जब मैं थक गई, तो उसी से पूछा। फिर उसने समझाया। अब मैं समझाऊं?

देखो, मेरी हथेली सीधी है न? अब, मैंने इसे उलटा किया तो उलटा हो गया कि नहीं? अब दुबारा पलटाना तो क्या हो गया? – सीधा!! बस, शीशों की बात भी बिल्कुल वही है। एक में देखो तो उलटा, और दोनों में देखो तो सुलटा! समझे? नहीं समझे? ओफ ओ अन्ना, कैसे समझाऊं तुम्हें? ··· वैसे ही समझाऊं, जैसे सखी ने मुझे समझाया?

तो देखो। इस शीशे को मैंने थोड़ा तिरछा करके तुम्हारी बगल में यहां कान के पास पकड़ा। अब मेरा आईना कहां गया? ये रहा। इसे तुम्हारे मुंह के सामने रखा, लेकिन इसे भी थोड़ा तिरछा करके।

अब सामने के आईने में देखो, बगल वाला शीशा दिख रहा है? अब इस आईने में से ही उस शीशे में झाको, तुम्हारी मुंडी दिखाई दे रही है? थोड़ा और तिरछा करो। अब दिखी? दिखी? हा हा ऽ ऽ! कैसा मजा आता है न? अपनी ही मुंडी बगल से दिख गई! पहले कभी देखा तुमने?

और ये देखो, इस दोहरी परछाईं में बायां कान अपनी जगह पर, बाई आंख अपनी जगह पर। लेकिन तुम सीधे अपनी आंख देख ही नहीं सकते। अपनी खोपड़ी कितनी निराली है। शीशों को जितना तिरछा करोगे, उतना ही तुम्हें उसके नए-नए हिस्से नजर आएंगे। यही सब समझाकर सखी कूड़ादान लेकर चली गई। जाते-जाते बता गई- महादेवी मिली तो उसे एक शीशा लौटा देना, अच्छा?

उसके जाने के बाद मैंने शीशों को जी-भर कर देखा। कभी इधर से मुंडी देखूं, तो कभी उधर से। कभी पीछे से देखूं, कभी आगे से। आमना-सामना करके देखूं, तो हजारों शीशे दिखें। ये सब देखा, तब मुझे अक्ल आई। तुम बताओ, मैं क्या समझी? नहीं बता सकते न? अरे अन्ना, तुम ठहरे लोहा-लक्कड़ के मिस्त्री। भला हाड़-मांस के इंसान के बारे में क्या जानो! लो, मैं समझाती हूं।

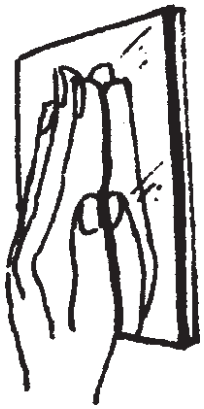

अन्ना, मैंने चार बातें समझीं। एक तो यह कि किसी चीज को समझना हो तो उसके अंदर झांको– जैसे कि तुम्हारी आंख के अंदर तुम्हारी छिपी हुई आत्मा बसती है।

दो– कि दुनिया दिखती है, तो अपने पहनावे के साथ, जो बायें को दायें और दायें को बायें कर देती है। जैसा कि शीशे में किसी को भी देखोगे तो वह उलटा दिखेगा।

कितने हो गए? दो न? तो तीसरा है कि अगर सटीक समझना है, तो उलटे का सुलटा करना पड़ेगा। जैसा कि मैंने इन दोनों शीशों के सहारे तुम्हारी मुंडी को सीधा कर दिया!

और चौथा– जितना आईनों को घुमाओगे उतने ही नए पहलू दिखाई देंगे। है न गजब की बात?

अरे–अरे, कहां की तैयारी है? अभी तो आगे का हाल बचा हुआ है। बैठो, बैठो। लो, एक कप चाय और पियो। वह वाली तो ठंडी हो गई होगी। हां, तो मैंने हर चीज को शीशे से परखना शुरू किया। जानते हो कैसे? अंदर झांककर, और उलटे का सुलटा कर! जैसे कि उस दढ़ियल का किस्सा लो। पहले तो उसकी बात सही लगे। किताबों से डरना नहीं चाहिए। उनमें इंसानों का पूरा तजुर्बा है। लेकिन जहां दो शीशों में उलटे का सुलटा किया, वहां समझ में

आवे कि किताब आम आदमी के लिए कोई न लिखे। अरे, हम कौन-सा पढ़ना जानते हैं? और पढ़ना भी जानते तो क्या इन महंगी किताबों को खरीद पाते? या उन्हें समझ पाते? यानी कि हमारी बातें जहां किसी और ने लिखीं कि वे हमसे पराई हो चलीं। है न? और उसे हमें वापस छीनना पड़ेगा। जी हां! तभी न हम पूरे इंसान बनेंगे!

ऐसे ही मैंने बाकी तीनों की बातों को भी नापा-तौला। वही जो रामराज, जाति, और पैसे कमाने की बातें करें। सब के उलट का सुलटा! न न, अब और न बताऊंगी ··· क्या अन्ना, तुम भी कितने भोले हो। अच्छा, तो उस श्रीदेवी की बात ले लो। कहती थी कि ईमानदारी से काम करूंगी तो पैसे भी कमाऊंगी। वह तीसमार खां भी तो यही कह रहा था। लेकिन अन्ना, तुम तो जानते ही हो कि काम मिलना कितना मुश्किल है, खास तौर से हम जैसों के लिए। और हम सब क्या बेईमानी से काम करते हैं? बताओ, हमारी झुग्गियों में कौन ऐसा होगा जो रोज आठ-दस घंटे पसीना बहाता न हो? आज तक किसी ने इतने पैसे बनाए जो मालामाल हो गया हो? तुम तो इतना काम किए और फिर भी वादोवालां से तुम्हें क्या मिला?

मैं तो देखती हूं कि जो भी लखपति हुआ वह किसी न किसी गोरखधंधे से नोट खींचा। तब यह कहने का क्या मतलब कि ईमानदारी से मेहनत करने से गरीबी मिटेगी? अजी, सब धोखा है! हमें बेवकूफ बनाने के लिए।

उस लाल तिकोण की तरह! क्या बस्ती में जितनों ने नसबंदी करवाई वे सब सुखी हो गए? सब शीशों का कमाल है! अब बस अन्ना, तुम भी अपना दिमाग लगाओ दूसरों की बातों को परखने के लिए। तब तक आगे की बात तो सुनो।

तीसरे दिन एक फौलादी कन्हैया आया। सबके सामने कहने

लगा– हमारी औरतों को हमारे काम में हाथ बंटाना चाहिए। हम इतना संगठन बनाते हैं, पूंजीवाद के खिलाफ लड़ते हैं, इतना समाज के बारे में सोचते हैं, लेकिन हम घर-परिवार से बंध जाते हैं, आगे बढ़ नहीं पाते। मैं समझ गई– यह द्विदेवी का चेला है!

बगल में आयाजान बैठी हुई थीं। बड़े जोर से बरसीं उसके ऊपर। बोलीं– तुमने कभी अपनी औरत का हाथ बांटा है? घर में वह जो पूरे परिवार को पालती है, उसे काम नहीं समझते क्या? घर के बाहर निकलकर काम करेगी तो उसी को काम मानोगे? अरे मियां, एक दिन वह हड़ताल कर दे तो तुम भूखों मर जाओ! उसका साथ चाहते हो, तो उसका साथ देना भी सीखो। हम हिस्सेदार हैं, तो हकदार भी हैं।

मुझे तो बड़ा मजा आया! आयाजान आईने में से झाक रही थीं!

चौथे दिन एक ताना-बाना बुनने वाली बुढ़िया बातों-बातों में खूब बोली, खूब लड़ी। कहने लगी– हम तो अपना हक लेंगे। बाप की जायदाद में हमारा भी हक है। सिर्फ लड़के को क्यूं मिले? लड़की भी लेगी। हम औरतें सब साथ चलेंगी। पहले खुद से शुरू करेंगी। फिर परिवार को सुधारेंगी। फिर पड़ोस में, और पड़ोस से दिल्ली तक बहनें हाथ में हाथ मिलाएंगी। एक के पास रोटी नहीं है, तो जिसके यहां दो चूल्हे जलते हैं, वह उसे रोटी देगी। हमें तो कामयाब होना है। तुम चाहे जो भी कर लो।

अन्ना, पहले तो बुढ़िया की बातें अच्छी लगीं। फिर शीशे का ख्याल आया। झट से उसमें झांककर देखा। पता है, कौन दिखी? स्त्रीदेवी! मैं बोली– आंय, उसको भी सुलटा करना पड़ेगा। बुढ़िया के

बाप के पास इतनी जायदाद भाई कहां से? हम जैसों के पास तो रोटी भी नहीं है। मेरा बापू कौन-सी पैसों की पोटली छोड़ गया कि उसके लिए लड़ मरूं? आज कमाती हूं तो आज खाती हूं। नहीं तो जय-जय सियाराम! दो चूल्हेवाली तो मेरी मालकिन लगे। आधी रोटी देगी भी, तो जूठन से। वह लड़े अपने बाप के पैसों को लेकर! मुझे तो लगे कि अगर औरतों की कोई जमात है, तो वह सिर्फ मेहनत के बल पर। जनाना होने से ही कोई सखी नहीं बन जाती। मैं रोटी का लेन-देन करूं तो बस उसी से जो मेरी तरह मजदूरी करे। बाकी बहनों को साथ आना है तो आवें। उनसे मैं गले लगूं, लेकिन सम्हल के। है न अन्ना? हमारी लड़ाई तो रोटी की है, मोटी की नहीं।

क्या? मेरा मर्द? अरे बहुत पीट लिया उसने। अब मैं कुछ करूंगी। छबनी से कुछ तो सीखा मैंने। अन्ना, कोई मकान एक दीवाल पर खड़ा न होवे। और फिर ये तो अपना समाज है। उसके तो कई दीवाल होंगी। एक दीवाल जात की, दूसरी रिवाज की, तीसरी कुछ और की। और नींव में जिंदगी की खींचातानी। जितने शीशे घुमाओ, उतनी दीवाल दिखें। हां! सिर्फ जाति या बड़े लोग या गरीबी से लोहा लेने से न चले। उससे तो एक ही दीवाल टूटेगी या बनेगी। हमें तो पूरा नया मकान बनाना है। है न?

जानते हो अन्ना, इस मकान में एक कमरा शादी-ब्याह का भी होवे, जिसमें औरत और मर्द का रिश्ता कैद है। तुम चाहे कुछ भी कहो अन्ना, वह रिश्ता है गैर-बराबरी का। सिर्फ मैं थोड़े ही पिटती हूं। बस्ती में तो तमाम औरतों का रोज भुर्ता बने। आज पिट गई, कल इज्जत लुट गई, परसों किसी ने जला दिया। यह सिर्फ मेरी तकलीफ नहीं है अन्ना। मैंने भी ठान लिया। अब कुछ करना है।

पहले अपने साथ काम पर जाने वाली औरतों को मैं ये आईने दिखाऊंगी। फिर मिलकर मर्दों से बात करेंगी। पूछेंगी– जिस थाली में खाते हो, उसी में छेद करते हो? उनको भी शीशा दिखाएंगी। मर्द सोचता है कि घर में बीवी आई तो उसपर हर जुल्म कर सकता है। यह भी कैसी झूठी तानाशाही? जब दो बेकसूरों पर कोड़े पड़ रहे हैं, तो उनमें कौन-सा ऊंच और कौन-सा नीच, अन्ना?

गरीबों के घर में औरत-मर्द की हालत बिल्कुल बैलों की जोड़ी की तरह है। हल साथ मिलकर खींचें, बीज साथ बोएं, गहाई खुरों से करें, और खाद भी दोनों की। ऊपर से सारी फसल कोई जमींदार ले जावे! तो जब दोनों को चारा कम मिले और पैनारी की नोक दोनों को चुभे, तो एक-दूसरे से भला क्यों सींग लड़ाएं? बाहर का गुस्सा घर में क्यों उतारें? ये भी कोई बात हुई? दो जोड़ी सींग मिलकर चलें तो किसी भी जमींदार के छक्के छूट जाएं! है न अन्ना?

झुग्गियों की सारी औरतों से बात करूंगी। जहां इतना दर्द है वहां जरूर हम सब को साथ बांधने वाली पट्टी भी होगी। और हमारा मर्द फिर भी न माने तो इस शादी वाले शीशे का भी कुछ करना होगा। तुमको भी साथ देना पड़ेगा। मैं भागने न दूंगी! और न ही ये आईना तुम्हें भागने देगा।

बस, अब खत्म करो। बहुत गप्पें हो गईं। सुलटा करते-करते अब मेरा दिमाग भी उलटा हो गया। जाओ, अब भागो यहां से। कल फिर आना। और लो, इस शीशे को साथ ले जाओ। कल बताना, इसमें क्या देखा।

झंकार

माफ कीजिएगा। मैं फिर इस कथा में घुस आया हूं। कुछ कहना है। लेकिन कहने से भी हिचकिचाता हूं, क्योंकि मैं घर की तरफ जा रहा हूं। घर का रास्ता तो जाना-पहचाना है, लेकिन मन में एक नया रास्ता खुल रहा है– जो खींचता भी है, डराता भी है।

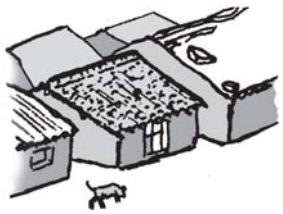

बन्नो का दिया हुआ शीशा मेरी जेब में है और उसे मैं बार-बार छूता हूं। ऐसा कौन-सा जादू है उस शीशे में, जो एक बर्तन मांजने वाली को महादेवी बना दे? सच पूछो, तो मुझे कुछ भी समझ में नहीं आया है···।

लेकिन बन्नो के सामने कैसे कह देता? आखिर वह है बन्नो और मैं हूं उसका अन्ना! मेरी नाक नहीं कट जाती? मिस्त्री हुआ तो क्या हुआ? मैं क्या सोच नहीं सकता? घर चलकर शीशे में अपनी परछाईं देखूंगा। शीशे में कैद परछाईं को अपने आईने में देखूंगा। रात भर सोचूंगा। जरूर सोचूंगा। कल जो बन्नो से मिलना है।

❐

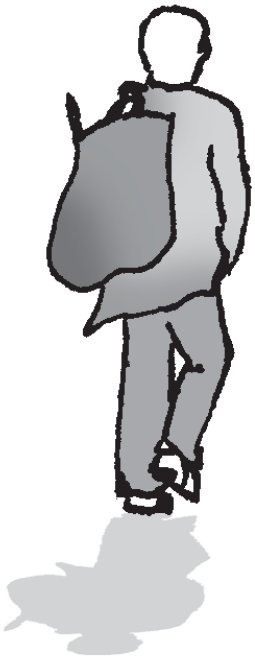

नव जनवाचन आंदोलन

बन्नो एक कामगार महिला है। बहुत ही साधारण। वह रोज-रोज अपने पति से पिटती है। एक दिन वह दुखी मन से छुंइया पहुंचती और छबनी की छह देवियों– भूदेवी, श्रीदेवी, भाग्य-देवी, बुद्धि-देवी, स्त्री-देवी और महादेवी– से अपने मन की व्यथा कहती है। छह देवियां उसे छह समाधान सुझाती हैं, जो हैं आधे-अधूरे... लेकिन उनसे मिलने का एक लाभ जरूर हुआ है कि बन्नो के पास अब अपना समाधान है। मगर क्या? सुनिए यह कहानी, बन्नो की जुबानी...

भारत ज्ञान विज्ञान समिति